International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
ISSN -2393-8048, January-June 2018, Submitted in May 2018, iajesm2014@gmail.com

संस्कारों की प्रासंगिकता

सुनीता व्यास, शोधार्थी (इतिहास), जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)
डॉ शशि कला, प्रोफेसर (इतिहास), जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सार

ग्रीक शैली का बौद्ध विषयों पर महत्वपूर्ण प्रभाव था, और कला और भवन निर्माण का गांधार स्कूल इस प्रभाव का सबसे अच्छा उदाहरण है। इंडो–इस्लामिक संश्लेषण का एक उदाहरण कला के कई क्षेत्रीय स्कूलों में देखा जा सकता है, जैसे डेक्कन, मुगल और कांगड़ा स्कूलों की पेंटिंग और भवन शैली। उर्दू, जो एक अन्य भारतीय भाषा है, के निर्माण में फ़ारसी भाषा भी एक महत्वपूर्ण कारक थी। विश्व एक परिवार है, जिसे वसुधैव कुटुंबकम भी कहा जाता है, अन्य सभ्यताओं द्वारा दिए गए योगदान के परिणामस्वरूप भारतीय संस्कृति और दैनिक जीवन में गहराई से अंतर्निहित है। इन्हीं माध्यमों से विश्व बन्धुत्व की अवधारणा का विकास एवं प्रचार–प्रसार हुआ है। इसमें भाषाई और धार्मिक भिन्नता के साथ–साथ मौलिक एकता का एक साथ सहवास है, यही कारण है कि यह अलग है। भले ही कई अलग–अलग भाषाएँ और धार्मिक उपसंस्कृतियाँ हों, राष्ट्रीय संस्कृति केवल एक ही है, और वह है भारतीय संस्कृति। इस संस्कृति का एशिया, दक्षिण–पूर्व एशिया और दुनिया भर में बड़ी संख्या में अन्य स्थानों पर प्रभाव पड़ा है।

परिचय

भारत के विशिष्ट इलाके और ऐतिहासिक विरासत, जो सिंधु घाटी सभ्यता तक फैली हुई है और वैदिक और बौद्ध काल के साथ–साथ स्वर्ण युग की शुरुआत और अंत के दौरान विकसित हुई थी, ने देश की समृद्ध संस्कृति में योगदान दिया है। भारत के लम्बे अतीत ने भी भारत की संस्कृति को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके अलावा, यह उन देशों की सांस्कृतिक परंपराओं, धार्मिक मान्यताओं और अन्य पहलुओं को अवशोषित करता है जिनकी सीमाएँ इसकी सीमा पर हैं।

अपनी संस्कृतियों, बोलियों, रीति–रिवाजों और रीति–रिवाजों के माध्यम से, भारत उस विशाल विविधता की एक विशिष्ट तस्वीर पेश करता है जिसे इस देश ने पिछले पांच सहस्राब्दियों के दौरान अन्य लोगों के साथ अपनी बातचीत में अनुभव किया है। सिंधी धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म और सिख धर्म ऐसी कुछ धार्मिक परंपराएँ हैं जिनकी उत्पत्ति भारत में हुई। सनातन धर्म भी भारत में जन्मी धार्मिक परंपराओं में से एक है।

मानवीय मूल्यों का मूल्यांकन

भारत सहित कई देशों में मानवीय मूल्यों में गिरावट की एक सामान्य प्रवृत्ति है। मानवीय मूल्यों के ह्रास की यह प्रवृत्ति जहां राष्ट्र के भावी विकास पथ के लिए एक बड़ा ख़तरा है, वहीं यह देश के अस्तित्व, सम्मान और अधिकार के लिए भी एक बड़ी चुनौती है। इस तथ्य के बावजूद कि समय के साथ सामाजिक और मानवीय मूल्यों में परिवर्तन अपरिहार्य है, दुनिया भर के अन्य देशों की तुलना में भारत में युवा आबादी आश्चर्यजनक रूप से तेजी से घट रही है। माता–पिता, शिक्षकों और आम जनता सहित समाज के प्रत्येक सदस्य की अगली पीढ़ी में मानवता के मूल्यों को स्थापित करने की जिम्मेदारी है।

मूल्य भारतीय संस्कृति को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं; यह तथ्य कि हमारे पास मूल्यों की इतनी विविध श्रृंखला है, हमें अन्य देशों के लोगों से अलग करती है। जिन नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों का हम पालन करते हैं, वे हमें सामाजिक परिस्थितियों में उचित व्यवहार करने के बारे में मार्गदर्शन प्रदान करके व्यावहारिक रूप से हमारे जीवन के हर पहलू को निर्देशित और सुरक्षित करने का काम करते हैं।5. फिर भी, अब हम अपने नैतिक मानकों को संशोधित कर रहे हैं, जिसका प्रभाव उस समाज पर पड़ता है जिसमें हम रहते हैं। परिवर्तन का प्राकृतिक नियम एक स्थिरांक है। यह कानून भारतीय संस्कृति सहित हमारे अस्तित्व में लगभग हर चीज को नियंत्रित करता है। हमारा ब्रह्माण्ड इसी नियम से संचालित होता है। भारत का एक लंबा इतिहास और संस्कृति है जो काफी समृद्ध है। जब भारतीय संस्कृति की बात आती है, तो दर्शन, धर्म और कला सभी पूरी तरह से संयुक्त होते हैं। भारतीय संस्कृति अपने पूरे इतिहास में अनेक परिवर्तनों से गुज़री है।

संस्कृति की प्रकृति, प्रतिबिंब और ऐतिहासिक विकास

संस्कार नाम की उत्पत्ति सम् उपसर्ग से दुक्रिन (सम् + स + कृ + घन = संस्कार) धातु मेंघन प्रत्यय जोड़ने से हुई है, जो कि संस्कारोति संस्कार से बना है, जैसा कि संस्कृत में कहा गया है। व्याकरण की परिभाषा. पाणिनि व्याकरण सूत्र सम्परिभ्य करतौ भूषणे के अनुसार भूषण का अर्थ सम् और परि उपसर्ग तथा कृ धातु के सम्बन्ध से बनता है। इसके अतिरिक्त भूषण का अर्थ उपसर्ग और धातु के सम्बन्ध से होता है। इस दृष्टिकोण में, संबंधित वस्तु या व्यक्ति को परिष्कृत, बुद्धिमान और व्यवस्थित तरीके से सजाया जाना चाहिए। योगदान देने के कार्य को कई संस्कृतियों में संस्कार कहा जाता है।

जब अन्य भाषाओं में अनुवाद किया जाता है, तो संस्कार वाक्यांश को उसकी संपूर्णता में व्यक्त करना अत्यंत कठिन होता है। इसका कारण यह है कि संस्कार शब्द का अर्थ इतना गहरा और जटिल है कि किसी भी अन्य भाषा के शब्द इसकी सतह के नीचे छिपी भावनाओं को व्यक्त करने में सक्षम हैं। यह एक कठिन कार्य है. ऐसी कई अन्य धारणाएँ हैं जिन्हें भारतीय साहित्य में संस्कार कहा गया है। इनमें से कुछ अवधारणाओं में शुद्धि, शिक्षा, प्रशिक्षण, परिष्करण, सौंदर्य, आभूषण, स्मृति, विचार, भावना, क्षमता, और शुद्धि, धार्मिक शामिल हैं। धार्मिक संस्कार। –कानून, आदि। सतह पर, अंग्रेजी में सेरेमनी और लैटिन में सेरीमोनिया शब्द एक दूसरे के समान प्रतीत होते हैं। हालाँकि, गहन अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका संबंध मानव जीवन के बाहरी पहलुओं तक ही सीमित है। बस इस पर थोड़ा विचार करें.।

चत्वारि वेदव्रतानि, स्नानं सहधर्मचारिणी संयोगरू
पंचानम यज्ञमनुष्ठानं देवपितृमनुष्यभूत ब्राह्मणं अतेषां च
अष्टक पर्वणारू श्रद्धा श्रावण्याग्रह्यानि चौत्र्याश्वयुजिति
सप्त पाकयज्ञसंस्था....सप्तवीर्ययज्ञ संस्था...सप्तसोम संस्था,

इन सहित चालीस संस्कारों का वर्णन है। गौतम धर्मसूत्र के बाद बौधायन धर्मसूत्र की रचना 500 ईसा पूर्व से 200 ईसा पूर्व के बीच मानी जाती है। इसमें तेरह संस्कारों का उल्लेख है तथा यह क्रम उपनयन, समावर्तन, विवाह, गर्भाधान आदि

के क्रम से प्रारम्भ होकर कर्णवेध के बाद पितृमेध तक पहुँचता है, जबकि आपस्तम्ब धर्मसूत्र में जिसका समय काल 600 ईसा पूर्व से 300 ईसा पूर्व तक माना जाता है। ईसा पूर्व बारह संस्कारों का उल्लेख मिलता है। कर्णवेध और अंत्येष्टि संस्कारों को स्थान नहीं दिया गया और इसकी शुरुआत उपनयनम् विद्यार्थस्थ श्रुतित संस्कार में मिलती है । वास्तव में, धर्मसूत्र अनुष्ठानों के सामाजिक भागों का विस्तृत विवरण देते हैं, जिनका संकेत केवल गृह्यसूत्रों में किया गया है।
वशिष्ठ धर्मसूत्र भी एक संक्षिप्त लेकिन महत्वपूर्ण धर्मसूत्र है, जिसके चौथे अध्याय में गर्भाधान, उपनयन, स्नान, विवाह और अंतिम संस्कार का उल्लेख किया गया है। प्रकृति विशिष्टम् चातुर्वर्ण्य संस्कार विशेषश्च परंपरागत रूप से यह धर्मसूत्र ऋग्वेद से संबंधित है। इसका प्रभाव धर्मसूत्रों के बाद निर्मित स्मृतियों पर दृष्टिगोचर होता है।" उपरोक्त धर्मसूत्रों की भाँति हिरण्यकेशी तथा विष्णु धर्मशास्त्र में भी कर्मकाण्ड संबंधी जानकारी मिलती है। इन्हें स्वतंत्र ग्रंथ नहीं माना गया है क्योंकि इनमें हिरण्यकेशी और आपस्तंब धर्मसूत्र की संक्षिप्त चर्चा है तो विष्णुधर्मशास्त्र का प्राचीन रूप लगभग 300 ईसा पूर्व रचा गया था, लेकिन इसे आधुनिक रूप में लाने के लिए तीसरी शताब्दी ईस्वी से सातवीं शताब्दी तक इसमें कई विषय जोड़े गए।

संस्कृति का इतिहास

मानवता की प्रगति का परिचायक है, मानव अपना विकास करने के लिए संसार के अन्य जीवधारियों से अधिक प्रयत्नशील रहा है भारतीय संस्कृति को प्रकृति की गोद में पली हुई आध्यात्मिक संस्कृति माना गया है। जिसमें विनय और शील को प्रमुखता दी गई है । सभी मनुष्यों में एक ही आत्मा के दर्शन करने का प्रयत्न किया गया है। सभी के लिये "सर्वे भवस्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया की नीति अपनायी गई है । सम्पूर्ण भारत का विभाजन प्रान्तों के रूप में हुआ तथा वहां के लोगों के खान, पान, रीति रिवाज, अचार विचार, भाषा, धर्म आदि भिन्न भिन्न है फिर भी एकता स्थापित की है । इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत में विविधता होते हुए भी एकता है । विश्व संस्कृति के इतिहास का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि उसमें जो निरन्तर, नवीन परिवर्तन होते गए एवं नवीन धारणाएं व मान्यताएं स्थापित होती गई उनके मूल में बहुत कुछ वैदिक संस्कृति के प्रेरणास्पद तत्व सम्मिलित है।

"चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः ।
तस्य कर्तास्मपि मां विद्धयकर्ताएमण्ययम् ।
ब्राह्मण क्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप ।।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभाव प्रभवैर्गुवैः ।।

भारतीय संस्कृति में व्यक्ति के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से सोलह संस्कारों की प्रशंसनीय कल्पना की गई है। मानव माता के गर्भ में प्रविष्ट होने की अवधि से पंचतत्व को प्राप्त होने तक इन्हीं संस्कारों से संस्कृत होता है। भारतीय संस्कृति में व्यक्ति को सामाजिक, धार्मिक प्राणी बनाने, उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करने तथा उसकी नैसर्गिक प्रवृतियों को समाजोपयोगी बनाने के लिए व्यक्ति का शारीरिक मानसिक एवं नैतिक परिष्कार अनिवार्य माना गया है। भरतीय संस्कृति में मानव जीवन के कल्याण की दृष्टि से किए गए कार्य संस्कार है ।

भारतीय संस्कृति में सोलह संस्कार

जीवन का एक ध्यये निश्चित किया गया और उस तक पहुँचने के लिए अनेक साधनों का आविष्कार भी किया गया । संस्कार भी इसी प्रकार का एक साधन है। इसमें मानव जीवन आधार को दो भागों में बांटा गया। एक तो वह जिसको लेकर मनुष्य उत्पन्न होता है । दूसरा वह जिसका संचय वह अपने वर्तमान जीवन में परिस्थितियों के अनुकूल करता है। शास्त्रकारों का मत है कि नवजात शिशु का मस्तिष्क कोरी पट्टी के समान नहीं है जिस पर बिलकुल नया लेख लिखना है, इसके विरूद्ध इस पर उसके अनेक पूर्ण जन्मों के संस्कार अंकित है। साथ ही साथ उनका यह भी विश्वास है कि नवीन संस्कारों द्वारा पुराने संस्कारों को प्रभावित उनमें परिवर्तन, परिवर्धन और उनका उन्मूलन भी किया जा सकता है । प्रतिकूल संस्कारों का विनाश और अनुकूलन संस्कारों का निर्माण ही जीवन को परिस्थितियों के अनुकूल करता है।
संस्कार मानव जीवन को योगयता प्रदान करने वाली प्रक्रिया है, अर्थात् संस्कार व्यक्ति को संस्कारित करता है। जिससे उसका शारीरिक तथा मानसिक दोनों तरह का विकास हो तथा वह समाज का सभ्य नागरिक बन सके । संस्कारों का वर्णन विशेष रूप से गृहासूत्रों में देखने को मिलता है। धर्मसूत्रों और स्मृतियों में भी इनका वर्णन मिलता है । फिर भी जीवन में कितने संस्कार होते है कितने संस्कार होने चाहिए, इस संबंध में मतभेद है । गौतम धर्मसूत्र में सबसे अधिक संख्या चालीस संस्कारों का उल्लेख मिलता है। वैखानस गृहासूत्र अट्ठारह संस्कारों का वर्णन करता है जबकि पारस्कर बौधायन तथा वाराह गृहासूत्र में तेरह संस्कारों का उल्लेख है।
वेदों में विशेष रूप से ऋग्वेद में तीन संस्कारों का उल्लेख मिलता है वे है गर्भाधान, विवाह और अन्त्येष्टि । इसके अतिरिक्त आयुर्वेद में उपनयन तथा मुण्डन संस्कारों का भी उल्लेख मिलता है।
आश्रलायनगृह्वासूत्र में दस संस्कारों का उल्लेख मिलता है –

1.	विवाह	6.	नामकरण
2.	गर्भाधान	7.	चूड़ाकरण
3.	पुसंवन	8.	उपनयन
4.	सीमन्तोन्नयन	9.	समावर्तन
5.	जातकर्म	10.	अन्त्येष्टि

गर्भाधान संस्कार की प्रासंगिकता

गर्भाधान संस्कार सनातन अथवा हिन्दू धर्म की संस्कृति संस्कारों पर ही आधारित है। हमारे ऋषि–मुनियों ने मानव जीवन को पवित्र एवं मर्यादित बनाने के लिये संस्कारों का अविष्कार किया। धार्मिक ही नहीं वैज्ञानिक दृष्टि से भी इन संस्कारों का हमारे जीवन में विशेष महत्व है। भारतीय संस्कृति की महानता में इन संस्कारों का महती योगदान है।
प्राचीन काल में हमारा प्रत्येक कार्य संस्कार से आरम्भ होता था। उस समय संस्कारों की संख्या भी लगभग चालीस थी। जैसे–जैसे समय बदलता गया तथा व्यस्तता बढती गई तो कुछ संस्कार स्वतरू विलुप्त हो गये। इस प्रकार समयानुसार संशोधित होकर संस्कारों की संख्या निर्धारित होती गई। गौतम स्मृति में चालीस प्रकार के संस्कारों का उल्लेख है। महर्षि

अंगिरा ने इनका अंतर्भाव पच्चीस संस्कारों में किया। व्यास स्मृति में सोलह संस्कारों का वर्णन हुआ है। हमारे धर्मशास्त्रों में भी मुख्य रूप से सोलह संस्कारों की व्याख्या की गई है। इनमें पहला गर्भाधान संस्कार और मृत्यु के उपरांत अंत्येष्टि अंतिम संस्कार है। गर्भाधान के बाद पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण ये सभी संस्कार नवजात का दैवी जगत् से संबंध स्थापना के लिये किये जाते हैं। दैवी जगत् से शिशु की प्रगाढ़ता बढ़े तथा ब्रह्माजी की सृष्टि से वह अच्छी तरह परिचित होकर दीर्घकाल तक धर्म और मर्यादा की रक्षा करते हुए इस लोक का भोग करे यही इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य है।

पुंसवन संस्कार की प्रासंगिकता

हिन्दू धर्मशास्त्र में अंकित सभी 16 संस्कारों में पुंसवन संस्कार को दूसरा संस्कार माना जाता है। हिन्दू कर्मकांड के अनुसार यूँ तो कुल 32 संस्कार होते हैं लेकिन इनमें से केवल 16 संस्कारों को ही महत्वपूर्ण माना गया है। शिशु के माँ के गर्भ में आने के तीन माह बाद ही पुंसवन संस्कार संपन्न करवाया जाता है। प्राचीन काल में शिशु का जन्म केवल पति–पत्नी के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं होता था, बल्कि संतान पैदा करना एक सामाजिक दायित्व भी होता था। इसलिए उस समय लोग सभी 16 संस्कारों का पालन करते थे, जिनमें से एक पुंसवन संस्कार भी है। आज हम आपको इस लेख के जरिये पुंसवन संस्कार का महत्व और इसकी सही विधि के बारे में बताने जा रहे हैं। पुंसवन कर्म से जुड़े महत्वपूर्ण तथ्यों और उसके महत्व के बारे में।

हिन्दू धर्म के सभी संस्कारों में से पुंसवन संस्कार दूसरा संस्कार माना जाता है। इस संस्कार को शिशु के माता के गर्भ में आने के तीन माह के बाद ही संपन्न करवाया जाता है। इस संस्कार को विशेष रूप से महिला के गर्भवती होने के महज तीन माह के बाद ही इसलिए संपन्न किया जाता है क्योंकि पैदा होने से तीन महीने के बाद शिशु के मस्तिष्क का विकास होना प्रारंभ हो जाता है।

जातकर्म संस्कार की प्रासंगिकता

सनातन अथवा हिन्दू धर्म की संस्कृति संस्कारों पर ही आधारित है। हमारे ऋषि–मुनियों ने मानव जीवन को पवित्र एवं मर्यादित बनाने के लिये संस्कारों का अविष्कार किया। धार्मिक ही नहीं वैज्ञानिक दृष्टि से भी इन संस्कारों का हमारे जीवन में विशेष महत्व है। भारतीय संस्कृति की महानता में इन संस्कारों का महती योगदान है। प्राचीन काल में हमारा प्रत्येक कार्य संस्कार से आरम्भ होता था। उस समय संस्कारों की संख्या भी लगभग चालीस थी। जैसे–जैसे समय बदलता गया तथा व्यस्तता बढती गई तो कुछ संस्कार स्वतरू विलुप्त हो गये। इस प्रकार समयानुसार संशोधित होकर संस्कारों की संख्या निर्धारित होती गई। गौतम स्मृति में चालीस प्रकार के संस्कारों का उल्लेख है। महर्षि अंगिरा ने इनका अंतर्भाव पच्चीस संस्कारों में किया। व्यास स्मृति में सोलह संस्कारों का वर्णन हुआ है। हमारे धर्मशास्त्रों में भी मुख्य रूप से सोलह संस्कारों की व्याख्या की गई है। इनमें पहला गर्भाधान संस्कार और मृत्यु के उपरांत अंत्येष्टि अंतिम संस्कार है। गर्भाधान के बाद पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण ये सभी संस्कार नवजात का दैवी जगत् से संबंध स्थापना के लिये किये जाते हैं। दैवी जगत् से शिशु की प्रगाढ़ता बढ़े तथा ब्रह्माजी की सृष्टि से वह अच्छी तरह परिचित होकर दीर्घकाल तक धर्म और मर्यादा की रक्षा करते हुए इस लोक का भोग करे यही इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य है।

निष्क्रमण संस्कार

निष्क्रमण का अर्थ है बाहर निकालना । बच्चे को पहली बार जब घर से बाहर निकाला जाता है, उस समय निष्क्रमण संस्कार किया जाता । इस संस्कार का फल विद्वानों ने शिशु के स्वास्थ्य और आयु की वृद्धि करना है बताया है शनिष्क्रमणादायुषो वृद्धिरप्युद्दिष्टा मनीषिभः । जन्म के चौथे मास में निष्क्रमण संस्कार होता है । जब बच्चे का ज्ञान और कर्मेन्द्रिया सशक्त होकर धूप वायु आदि सहने योग्य बन जाती है। सूर्य तथा चंद्रादि देवताओं का पूजन करके बच्चे को सूर्य, चंद्र आदि के दर्शन कराना इस संस्कार की मुख्य प्रक्रिया है । चूंकि बच्चे का शरीर पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश से बनता है इसलिए बच्चे का पिता इस संस्कार के अन्तर्गत आकाश आदि पंच भूतों के अधिष्ठता देवताओं से बच्चे के कल्याण की कामना करते हुए कहता है

'शिवे ते स्तां धावापृथिवी असंतोपे अभिश्रियौ ।
शं ते सूर्य आ तपतुश वातो वातुते हदे
शिवा अभि क्षरन्तु त्वापों दिव्याः पयस्वतीः ।।

अर्थात् हे बालक ! तेरे निष्क्रमण के समय धुलोक तथा पृथ्वी लोक कल्याणकारी सुखद एवं शोभास्पंद हो । सूर्य तेरे लिए कल्याणकारी प्रकाश करें । तेरे हृदय में स्वच्छ कल्याणकारी वायु का संचरण हो । दिव्य जल वाली गंगा यमुना आदि नदिया तेरे लिए निर्मल स्वादिष्ट जल का वहन करें । वस्तुतः इस संस्कार के मूल में यह विचार था कि एक निश्चित और निर्धारित तिथि पर शिशु को सर्वप्रथम उन्युक्त वातावरण और प्राकृतिक जीवन में लाकर तथा सूर्य और चन्द्र जैसे नक्षत्रों के प्रकाश में लाकर उसके स्वच्छन्द विकास पर बल दिया जाये ।

जन्म से पूर्व एवं पश्चात के संस्कारों का वैज्ञानिक आधार

भारतीय संस्कृति व हिन्दू धर्म में संस्कारों का विशेष महत्त्व है। संसार की सभी वस्तुएँ संस्कारों द्वारा सम्पन्न होकर ही पूर्णता को प्राप्त करती है । मानव जैसा श्रेष्ठ प्राणी भी माता के गर्भ से पूर्ण मनुष्य रूप में उत्पन्न हो या उसे किसी संस्कार की आवश्यकता ही न हो यह बात असम्भव है । अतः मनुष्य की जन्म जात कमियों को दूर करके सभ्य समाज के लायक मनुष्य बनाने के लिए संस्कारों की आवश्यकता होती है व्यक्ति के व्यक्तित्त्व विकास में संस्कारों की अहम् भूमिका होती है । गर्भाधान से लेकर मृत्यु तक संस्कारों से शरीर व मन की शुद्धि के साथ भावी जीवन की आधारशीला तैयार होती है।

गर्भाधान संस्कार का महत्त्व

मनुष्य माता के गर्भ से शिशु के रूप में जब जन्म लेता है तब वह अपने साथ दो प्रकार के संस्कारों को लेक आता है एक प्रकार के संस्कार वे है जिन्हे वह अपने माता पिता से संस्कारों के रूप में वंशानुक्रम से प्राप्त करता है। ये संस्कार अच्छे और बुरे दोनों हो सकते है । वैदिक विचारधारा में मनुष्य जन्म का उद्देश्य शुभ संस्कारों द्वारा अन्तः एवं बाह्य दोनों प्रकार के मैलों को धोना है। जिस समय, जिस क्षण आत्मा शरीर के बन्धन को प्राप्त हुई उसी समय से उसी क्षण से वैदिक विचारधारा उस पर उत्तम संस्कार डालना शुरू कर देती है ५ विधिपूर्वक संस्कार से युक्त गर्भाधान से अच्छी और सुयोग्य संतान उत्पन्न होती है। इस संस्कार से वीर्य संबंधी तथा गर्भ संबंधी पाप का नाश होता है दोषों का मार्जन तथा क्षेत्र का

संस्कार होता है । गर्भाधान के समय स्त्री पुरूष जिस भाव से अनुरक्त होते है उसका प्रभाव उनके रज वीर्य पर भी पड़ता है ।

संस्कारों का सामाजिक एवं आर्थिक विश्लेषण

समाज शब्द की निष्पत्ति दो शब्दों सम एवं अज (सम + अज) से हुई है। सम् का तात्पर्य एकत्र अथवा इकट्ठा तथा अज का तात्पर्य साथ रहना है। इस प्रकार समाज से तात्पर्य एक साथ रहने वाले समूह से है। सामान्य रूप से दो या दो से अधिक व्यक्तियों के समूह को समाज कहते हैं। जब हम किसी समाज का अध्ययन करते हैं तो उसमें निहित उसके मुख्य घटक व्यक्ति, समूह तथा इन समूहों के सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करते हैं। प्राचीन भारतीय हिन्दू समाज अनेक जातियों, समूहों तथा वर्गों में विभक्त है। प्रत्येक वर्गों के अपने नियम, धार्मिक विधान, संस्कार तथा परम्पराएं हैं। भारतीय समाज के विकासक्रम में शनैरू शनैरू जीवन की धारा अनुशासित एवं नियमबद्ध होती गयी। आगे चलकर नियमों की इसी आबद्धता ने संस्कार का रूप ले लिया।

भारतीय संस्कारों की प्रणाली और स्वरूप

भारतीय संस्कृति में संस्कारों की प्रणाली और स्वरूप, सामाजिक अनुभव पर आधारित है। प्राचीन काल से हिन्दू समाज में मनुष्य के व्यक्तित्व के समुत्थान के निमित्त संस्कारों का प्रतिपादन किया गया था । प्राचीन काल से ही मानव ने अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन को सुव्यवस्थित करके पूर्णता की ओर ले जाने के लिए जिन रीतियों या संस्थागत व्यवस्थाओं को अपनाया, संस्कार उन्हीं में से एक है। जीवन में इसकी नियोजना इसलिए की गई कि मनुष्य का वैयक्तिक और सामाजिक विकास हो सके तथा उसका दैहिक और भौतिक जीवन सुव्यवस्थित ढंग से उन्नत हो सके। व्यक्ति के असंस्कृत स्वरूप को सुसंस्कृत और अनुशासित करने के निमित्त संस्कारों की अभिव्यक्ति की गई। अति प्राचीन काल में संस्कारों की पद्धतियां विस्तृत तथा विशिष्ट थी, जिनका उदय सुदूर निश्चित ही अतीत के अन्तराल में निहित है, किन्तु यह निश्चित है कि सामाजिक आवश्यकताओं के कारण संस्कारों का जन्म हुआ और कालक्रम से उन्हें धार्मिक अवतरण प्राप्त हो गया। प्राचीन समय में सामाजिक संस्थाएं, विश्वास, भावना, कला तथा विज्ञान आदि सभी एक–दूसरे से आश्रित थे, इसी कारण संस्कारों ने जीवन व विज्ञान को अपनाया ।

संस्कारो हि नाम गुणाधनेन
वास्याद्होषापनयनेन वा।।

अर्थात् संस्कार की प्राप्ति दो प्रकार से की जा सकती है प्रथम गुणाधान (गुणों का स्थापन) जैसे श्वेत वस्त्र को रंगकर नवीन रंग की प्राप्ति तथा द्वितीय दोष की निवृत्ति जैसे मलिन वस्त्र को साफ कर पुनः स्वच्छ वस्त्र की प्राप्ति।संस्कारों की सम्पन्नता और अनुपालन से मनुष्य के जीवन का सर्वांगीण विकास तो होता ही है साथ ही साथ उसका सामाजिक और सांस्कृतिक कार्य भी व्यवस्थित और सुगठित रूप से अग्रसर होता है। मूलतः सभी संस्कार व्यक्ति के जीवन को क्रमिक रूप से विकसित करने में सहयोग प्रदान करते हैं तथा जीवन को सामाजिक बनाते हैं। जिस प्रकार स्वर्णकार आग से स्वर्ण परिष्कृत करके आभूषण बनाता है, उसी प्रकार माता–पिता, गुरु और पुरोहित संस्कारों द्वारा व्यक्ति का परिष्कार करके उसे परिवार, समाज और राष्ट्र का उत्तम सदस्य बनने में योगदान करते हैं। संस्कारों की विविध क्रियाओं को निष्ठापूर्वक करने से व्यक्ति समाज का पूर्णतरू अभिन्न अंग बन जाता है। अतरू संस्कार हिन्दू समाज के सदस्यों के लिए अत्यन्त अनिवार्य धार्मिक विधान रहे हैं।

उपसंहार

प्राचीन भारतीय सामाजिक संगठन के मूल तत्त्वों में संस्कारों का महत्त्वपूर्ण स्थान है जिसकी प्राचीनता मानव की उत्पत्ति से संपृक्त की जा सकती है। सुदूर अतीत में उदित हुई अनेकानेक शुभ क्रियाएँ समय के अनुसार परिवर्तित होते हुए संस्कारों में परिगणित की गयीं जो वर्तमान में भी प्रचलित हैं। वस्तुतरू व्यक्ति के व्यक्तिगत तथा श्रेयस एवं निःश्रेयस की प्राप्ति विकास तथा प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति तथा अशुभ प्रभावों से सुरक्षा हेतु प्राचीन शास्त्रकारों ने सामाजिक संगठन के एक मौलिक तत्त्व के रूप में इसे अर्थात् संस्कारों को स्थापित किया। संस्कार केवल कर्मकाण्ड एवं धार्मिक अनुष्ठान ही नहीं है बल्कि इसका सामाजिक–आर्थिक एवं वैज्ञानिक सरोकार है। ये हमारे पुरातन विकासशील सांस्कृतिक जीवन की अभिव्यक्ति हैं जो सामाजिक जीवन के अभिन्न अंग के रूप में मान्य हैं। सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से अवलोकन करें तो संस्कार व्यक्ति के विकास तथा सामाजिक हितों में सामंजस्य स्थापित करते दृष्टिगत होते हैं। ये ऐसे धार्मिक अनुष्ठान हैं जिनसे शुद्धता प्राप्त करके व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करता है।

संस्कार केवल बाह्य सौन्दर्य हेतु आवश्यक नहीं है अपितु ये अभ्यान्तर पक्षों को शुद्ध कर सम्पूर्ण जीवन में मार्गदर्शक की भूमिका का भी निर्वहन करते हैं। इनकी जड़ें अत्यन्त प्राचीन हैं। वैदिक ग्रन्थों में तो स्पष्ट रूप से संस्कारों के प्रमाण मिलते हैं, लेकिन पुरातात्विक साक्ष्यों से इनकी प्राचीनता प्रागैतिहासिक काल तक जाती है। नृजातीय अध्ययन अथवा मानवशास्त्र के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इन संस्कारों के अन्तर्गत सम्मिलित कुछ कर्मकाण्डीय पद्धतियाँ मानव की उत्पत्ति से ही प्रारंभ हुयी होंगी। प्रायः सभी वैदिक ग्रन्थों चाहे वह ऋग्वेद हो या सामवेद अथवा यजुर्वेद या अथर्ववेद सभी में संस्कार से संबंधित कुछ पद्धतियों का उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद में तो संस्कारों के संपादित होने के समय पढ़े जाने वाले मंत्रों का विस्तृत उल्लेख है जबकि अथर्ववेद में लगभग अधिकांश संस्कारिक क्रियाओं का वर्णन मिलता है।

वेदों की आधारभूमि पर रचित ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यक, उपनिषदों, गृहसूत्रों, धर्मशास्त्रों, स्मृतिग्रन्थों, पुराणों तथा उनकी टीकाओं में संस्कारों का विस्तृत उल्लेख मिलता है तथा साथ ही साथ संस्कारों की क्रिया विधियों, मंत्रों, नियमों–निषेधों आदि का विस्तृत विवेचन भी मिलता है । किन्हीं – किन्हीं ग्रन्थों में संस्कारों की संख्या अड़तालिस तक परिगणित की गयी तो अनेक ग्रन्थों में इनकी संख्या अट्ठारह बारह तेरह, दस आदि मिलती है। प्रायः व्यासस्मृति तथा वीरमित्रोदय संस्कारप्रकाश में वर्णित सोलह संस्कारों को कालान्तर में मान्यता प्रदान की गयी जो आज भी प्रचलित है।

संस्कारों का धार्मिक महत्त्व सर्वविदित है। धर्म का तात्पर्य श्धारणश करने से है। निहितार्थ है कि समाज अथवा परिवार संस्कार को धारण कर, उसकी प्रक्रियाओं का संपादन कर बालक को योग्य बनाते हैं जिससे कि एक श्रेष्ठ व्यक्ति के रूप में वह समाज की परिसम्पत्ति बन सके। धार्मिक प्रक्रियाएँ बालक में गुणों को समावेशित कर उनमें गुणात्मक परिवर्तन लाते हैं। संस्कार के अवसर पर किए जाने वाले प्रत्येक चरण अथवा कार्य का असाधारण महत्त्व है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[1] आचार्य, श्रीराम शर्मा, "संस्कारों की पुण्य परम्परा", (1993), अखण्ड ज्योति, संस्थान, मथुरा, पृ.सं. 15
[2] उपाध्याय, पं. श्री कृष्णानन्द, " षोडश संस्कारों में चूड़ाकरण का महत्त्व कल्याण, (फरवरी 2006), गीताप्रेस गोरखपुर, उ. प्र., पृ. सं. 517, 527
[3] गंगराड़े, डॉ. प्रकाशचन्द्र, "हिन्दुओं के रीति रिवाज एवं मान्यताएँ", हिन्दु धर्म में संस्कारों का महत्व क्यों ? (2005), हिन्दूलॉजी बुक्स, नई दिल्ली, पृ.सं. 30,34,36,41,45
[4] गोयल, डॉ. प्रीती प्रभा, भारतीय संस्कृति (2000) राजस्थान ग्रन्थागार, जोधपुर पृ. स. 72, 84
[5] पाण्डेय, वायुनन्दन, "भारतीय संस्कृति की वैज्ञानिकताः संस्कारों की वैज्ञानिक उपयोगिता" (2008) साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा पृष्ठ सं. 37
[6] महाजन, डॉ. संजीव, "भारतीय समाज (2004) अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, पृ. स. 77
[7] महाजन, डॉ. संजीव, "भारतीय समाज (2004) ", अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली पृ. सं. 76, 88
[8] मिश्र. पं. श्री गंगाशंकर जी, "विवाह – आध्यात्मिक संबंध (कल्याण 2006), गीता प्रेस, गोरखपुर, उ.प्र. पू. स. 121
[9] मिश्र, डॉ. श्री विद्यानिवास, "संस्कारों की स्वरूप – मीमांसा (कल्याण, संस्कार अंक 2006) " गीता प्रेस, गोरखपुर, उ. प्र. पृ. स. 111
[10] मिश्र, डॉ. श्री ललित, "शिखा या चोटी की महिमा" कल्याण, संस्कार अंक 2000 गीताप्रेस गोरखपुर, उ. प्रदेश, पृ. सं. 310
[11] मिश्र, डॉ. विद्यानिवास, "संस्कारों की स्वरूप मीमांसा" कल्याण, संस्कार अंक (2006), गीताप्रेस, गोरखपुर, उ. प्रदेश, प्र. सं. 109
[12] आश्वलायनगृह्यसूत्र. गणपति शास्त्री, संस्कृत ग्रंथ प्रकाशन, त्रिवेन्द्रम, 1923
[13] डॉ. जमुना पाठक, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2011
[14] शिवराम शास्त्री शित्रें, कर्नाटक प्रिंटिंग प्रेस, मुम्बई, 1938
[15] आपस्तम्बगृह्यसूत्र रू डॉ. उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण वि.स. 2062
[16] सुदर्शनाचार्य विरचित, सं. महादेव शास्त्री, गवर्नमेण्ट ब्रांच प्रेस, मैसूर, 1893
[17] काठकगृह्यसूत्र : डॉ. विलेम कालण्ड, दयानन्द महाविद्यालय संस्कृत ग्रंथमाला, लाहौर, वि.सं. 1981
[18] कौषीतकगृह्यसूत्र रू भवत्रात टीका सहित सं०ति०आर० चिन्तामणि, आनन्द प्रेस, मद्रास, 1944
[19] कौशिकगृह्यसूत्र : (अनु.) उदयनारायण सिंह, ज्योतिष प्रकाश प्रेस, बनारस, 1942
[20] गोभिलगृह्यसूत्र रू रूद्रस्कंद व्याख्यासहित, , महादेव शास्त्री, एल० श्रीनिवासाचार्य, गवर्नमेण्ट ब्रांच प्रेस, मैसूर, 1913

SHRADHA EDUCATIONAL ACADEMY